श्रीलसरस्वतीगोस्वाम्यष्टकम्

[त्रिदण्डिस्वामी-श्रीमद्भक्तिरक्षक-श्रीधर-महाराज- कृतः]

आशैशवोपासितभक्तियोगं दुःसंगत्यागाय दृढ़प्रतिज्ञं ।
कृष्णानुसन्धाननिमग्नचित्तं वन्दे प्रभुं श्रीलसरस्वतीं तम् ॥१॥
श्रीगौरपादाब्जसुभृङ्गराजं नाम्नां प्रचारोद्यमपूर्णहृदं ।
श्रीधामसेवासु नितान्तचेष्टं वन्दे प्रभुं श्रीलसरस्वतीं तम् ॥२॥

जो बचपनसे ही भक्तियोगके उपासक हैं, दुःसंगका परित्याग करनेमें दृढ़-संकल्प हैं और कृष्णानुसंधानमें निमग्न-चित्त हैं, उन श्रील सरस्वती प्रभुकी मैं बन्दना करता हूँ ॥१॥

जो श्रीगौर-सुन्दरके चरण-कमलोंके मधुपोंमें श्रेष्ठ हैं अर्थात् उनके अनन्य सेवक हैं, जिनका हृदय नाम-प्रचारके उद्यमसे परिपूर्ण है एवं जो श्रीधामकी सेवाके लिए अतिशय प्रयत्नशील हैं, उन श्रीलसरस्वती प्रभुकी मैं बन्दना करता हूँ ॥२॥

शास्त्रार्थनिर्द्धारणसद्वरेण्यं
भक्तेर्व्विरुद्धाशयभेददक्षं ।
नित्यं सतां मानसराजहंसं
वन्दे प्रभुं श्रीलसरस्वतीं तम् ॥३॥

निर्माय विस्तारिसुबोधभाष्यं
तत्त्वान्धलोकस्य सुदृक्प्रदञ्च ।
उत्पादिताशेषसुधीप्रमोदं
वन्दे प्रभुं श्रीलसरस्वतीं तम् ॥४॥

गोपेशनेत्रोत्सववृद्धिरामं
औदार्यमाधुर्यरसाब्धिपूर्णम् ।
राधासरस्तीरनिवासयत्नं
वन्दे प्रभुं श्रीलसरस्वतीं तम् ॥५॥

शुद्धेन ज्ञानेन जगज्जनानां
विनाशितं मोहघनान्धकारं ।
आचार्यवर्य्येण कृपामयेन
वन्दे प्रभुं श्रीलसरस्वतीं तम् ॥६॥

पारेसमुद्रं गुरुगौरवाणीम्
आम्नायधारा प्रसृतां समृद्धां ।
विस्तार्य योऽत्यन्तमुदं प्रलेभे
वन्दे प्रभुं श्रीलसरस्वतीं तम् ॥७॥

चैतन्य संगीतिसहस्रवक्त्रं
जीवस्य दुःखेन दयार्द्रचित्तं ।
भृत्येषु दीनेषु कृपागुणाब्धिं
वन्दे प्रभुं श्रीलसरस्वतीं तम् ॥८॥

जो शास्त्र-समूहोंका वास्तविक उद्देश्य निर्द्धारित कर सज्जनोंके वरेण्य हुए हैं, जो भक्तिविरुद्ध-चित्तको दमन करनेमें निपुण हैं एवं जो संतोंके मानस-सरोवर में राजहंसस्वरूपसे नित्य विचरण करते हैं, उन श्रील-सरस्वती प्रभुकी मैं वन्दना करता हूँ।

जिन्होंने सुसिद्धांतपूर्ण भाष्यकी रचनाकर तत्त्वके विषयमें अन्ध जगत्‌को सुदर्शन प्रदान किया है, एवं सुधी व्यक्तियोंका आनन्दवर्द्धन किया है, उन श्रील-सरस्वती प्रभुकी मैं वन्दना करता हूँ।

जिनका रमणीय स्वरूप देखकर श्रीकृष्णका आनंद वर्द्धित होता है, जो औदार्य और माधुर्य के परिपूर्ण समुद्र हैं एवं जो अत्यन्त आग्रहसे राधाकुण्डके तटपर निवास करते हैं, उन श्रीलसरस्वती प्रभुकी मैं वन्दना करता हूँ।

जिन परम करुणामय आचार्यश्रेष्ठके द्वारा ज्ञान पाकर जगद्वासियोंका अज्ञान-अन्धकार विनष्ट हो गया है, उन श्रीलसरस्वती प्रभुकी मैं वन्दना करता हूँ।

जिन्होंने आम्नायधारा प्रसूत-अर्थात् श्रीगुरुपर-म्परा-धारासे निःसृत श्रीगुरुगौर-वाणी का पाश्चात्य देशोंमें प्रचार कर अत्यन्त आनन्द लाभ किया था, उन श्रीलसरस्वती प्रभुकी मैं वन्दना करता हूँ।

जो श्रीचैतन्यदेवका गुण वर्णन करनेमें सहस्र-मुख हो जाते हैं, जीवोंके दुःखसे जिनका हृदय द्रवित है एवं दीन सेवकोंके प्रति जो करुणाके सागर हैं, उन श्रीलसरस्वती प्रभुकी मैं वन्दना करता हूँ।

प्रतिबन्धक

जीवमात्रकी प्राप्य वस्तु है प्रीति। किन्तु वह प्रीति अनित्य हो, तो उसे शुद्ध अखण्ड-प्रीति नहीं कह सकते। प्रीति सभी चाहते हैं। प्रत्येक जीवमें हर समय प्रीति लाभ करनेकी चेष्टा देखी जाती है। पुत्र-शोकसे कातरा माता प्रीति पानेकी आशासे शोक करती है, प्रीति पानेकी आशामें बिलासप्रिय जीव नृत्य, गीत और वाद्यादिकी ओर दौड़ता है और प्रीतिके उद्देश्यसे इन्द्रिय-सुख प्राप्तिके लिए कितने ही शुभाशुभ कर्मोंमें प्रवृत्ति होती है।

प्रीति-लाभ करनाही चेतनका धर्म है

आज भी मानवज्ञानमें प्रीति लाभ करनेके उद्देश्यके सिवा चेतनका कोई दूसरा धर्म लक्षित नहीं होता। प्रीतिको ही केन्द्र कर चेतनकी समस्त चेष्टाएँ होती हैं। अतः ऐसी प्रीति किस प्रकार पाई जावे—उसके अनुसंधानमें समग्र चेतन-जगत् सर्वदा व्यग्र है। जीव सर्वदा प्रीतिकी खोज करते हैं, अतएव नित्य-प्रीति ही जीवोंके लिए प्रार्थनीय वस्तु है।

नित्य-प्रीतिकी प्राप्तिमें बाधा

जहाँ प्रीतिका अनुसंधानकारी देहात्मबुद्धिके कारण अपने अस्तित्वको अनित्य समझता है, वहाँ उसकी लक्ष्य वस्तु भी अनित्य होती है। बद्ध जीवमें नित्य-प्रीतिका अभाव होता ही है। अतः उस अभावको मिटानेके लिए उनमें नित्य प्रीति प्राप्त करनेकी चेष्टा देखी जाती है। किन्तु वह प्रीति मायिक काल और सीमा द्वारा बाधित होनेके कारण बद्ध जीवोंमें अनित्य और विकृत रूपमें प्रतिफलित होती है। जीवोंकी प्रीति जब तक मायिक काल और सीमाके अधीन रहती है तबतक नित्य-प्रीतिकी आकांक्षा रहनेपर भी उनमें वह (प्रीति) विशुद्धरूपमें प्रकाशित नहीं होती।

हरि-विमुख जगत् काल और सीमाके अधीन है

जगतकी सभी वस्तुएँ काल और सीमाके अधीन हैं, केवलमात्र भगवत्ता इनके अधीन नहीं है। काल और सीमा, भगवान्‌से उत्पन्न होकर प्राकृत जगत्‌में

भगवद्‌बहिर्मुख जीवोंको आच्छादित करते हैं। भगवानकी कथा पढ़नेपर भी हरिविमुख जीव भगवानको देश और कालके अन्तर्गत खींच लाते हैं।

हरिविमुखता दूर होनेपर भगवत् स्वरूपकी अभिव्यक्ति

हरिविमुख जीव अपनेको बाहरी जगत्का भोक्ता समझता है। जब उनकी बहिर्मुखता दूर हो जाती है तो उनका भोक्ता अभिमान दूर हो जाता है तथा वे मायिक काल और सीमाकी शृंखलासे मुक्त हो जाते हैं। हरिविमुख जीव अपना अनित्य और सीमाबद्ध ज्ञान परित्याग करने पर मायातीत जनक भगवान्का स्वरूप प्राप्त कर सकता है।

प्रीतिका अनुसंधान स्वभावगत है; प्राकृत और अप्राकृत दो भेद

नित्य और असीम प्रीतिका अनुसंधान जीवमात्र करता है। यह उनकी स्वाभाविक वृत्ति है। इसे वे सब समय अनुभव करें अथवा न करें, उनका यह धर्म कभी भी उनका संग नहीं छोड़ता—उनसे अलग नहीं होता। जो लोग प्रीतिका अनुसंधान करते हैं, वे दो भागोंमें विभक्त हैं। एक अनित्य प्रीतिका अनुसंधान करता है और दूसरा नित्य प्रीतिका; अर्थात् एक श्रेणीके लोग प्राकृत और दूसरी श्रेणीके अप्राकृत होते हैं। अनित्य और सीमायुक्त धर्म प्राकृत होता है; नित्य और वैकुंठ (असीम) धर्म अप्राकृत होता है। प्राकृत प्राकृत हरि-विमुख व्यक्ति अनित्य सुखकी लालसामें प्रमत्त रहते हैं, किन्तु अप्राकृत सेवोन्मुख व्यक्ति केवल कृष्ण-सेवा-सुखमें ही सर्वदा निमग्न रहते हैं।

प्राकृत हरिविमुख व्यक्तियोंका स्वभाव—सत् वस्तुमें भोग्य-ज्ञान

प्राकृत व्यक्ति हरि विमुख होनेके कारण अनित्य और मायिक विषयोंका आदर करना सीखा है—यहाँ तक कि वे अप्राकृत भगवद् उन्मुख व्यक्तियोंके सेव्य

कृष्णचन्द्र, कृष्ण भक्ति और कृष्ण-भक्तिको भी अपना भोग्य समझते हैं। मुखसे अप्राकृत शब्द बोल कर अपनी अनित्य प्रीतिकी दूकान लगाया करते हैं। फल यह होता है कि नित्य प्रीतिमय विग्रह श्रीकृष्णचन्द्रके साथ उनका साक्षात्कार कभी नहीं होता। वे अप्राकृत कृष्ण, कृष्ण-भक्ति और कृष्ण-भक्तको केवल अनित्य प्राकृत पिण्ड विशेष ही नहीं समझते अपितु अपनी भोग्य वस्तु भी समझते हैं।

अप्राकृत भक्तोंका स्वभाव–दुःसंग त्याग

अप्राकृत भक्तोंकी धारणा वैसी नहीं होती। जब प्राकृत व्यक्ति अप्राकृत धारणाको कलुषित करने के अभिप्रायसे अनित्य प्रीतिका ढोंग दिखलाता है तो भक्त उसका सम्पूर्णरूपसे परित्याग करते हैं और वैसे संगको बिलकुल दुःसंग समझते हैं।

भक्त और अभक्तमें भेद

भक्त और हरि-विमुख अभक्तमें आकाश पाताल-का अन्तर है। भक्त-प्राकृत प्रतिबन्धक अर्थात् दुःसंग-को परित्याग करता है। किन्तु अभक्त अनित्य प्रीतिकी (आपात सुख)आशामें दुःसंग को छोड़ना नहीं चाहता, मादक द्रव्यका सेवन करनेवाला मादक द्रव्यका त्याग नहीं करना चाहता,स्त्रैण कभी भी अपनी सेव्य कामि-नियोंका परित्याग नहीं कर सकता। दुःसंग छोड़नेमें असमर्थ होनेसे उनकी अनित्य विषयोंमें अभिनिवेश —अत्यासक्ति हो जाती है।

दुःसंगका परित्याग ही मङ्गलका मूल है

प्राकृत बन्धु-बांधवोंके संगमें रंगजानेसे, कृष्ण या कृष्ण-भक्त हमारे एक मात्र परम बन्धु हैं—ऐसी भावना नहीं होती। मतवाला व्यक्तिका मादक द्रव्योंके, तथा स्त्रैण व्यक्तियोंका स्त्रियोंके हाथ से छुटकारा पाना बहुत ही कठिन होता है। किन्तु यह बात बिलकुल सत्य है कि जबतक दुःसंगका परित्याग न किया जाय तबतक कल्याण होनेकी कोई भी संभावना नहीं है।

अभक्तोंकी कुचेष्टासे समाजका अमंगल

प्राकृत अभक्त लोग बहुधा अपनी अपनी आस-क्तियोंका परित्याग करना तो दूर रहा, आत्मावंचनाके उद्देश्यसे विविध प्रकारका कौशल विस्तार करते हैं।

इस तरह वे कपटका आश्रय लेकर समाजको ठगते हैं। भक्तोंका वेश धारणकर निरीह लोगोंको गाँजा-भाँग आदि मादक द्रव्य सेवन करनेकी शिक्षा देते हैं; विलासिता, इन्द्रिय-परायणता आदि दुराचार अप्राकृत भजनके अंग हैं—ऐसा प्रचार करते हैं।

अभक्तोंके प्रति अप्राकृत भक्तसमाजकी उपेक्षा

अप्राकृत भक्त समाज इस श्रेणीके अभक्तोंको कपट और दुःसंग समझ कर उनकी उपेक्षा करता है। अप्राकृत होनेका—अप्राकृत अवस्था प्राप्त करनेका उपाय है—अप्राकृत शास्त्र और अप्राकृत भक्तोंकी वाणी श्रवण करना, किन्तु विषयोंमें आसक्त प्राकृत पाठक या श्रोता प्राकृत दुःसंगपूर्ण बुद्धिसे उसे दूषित कर देते हैं। वे अपना २ एक एक दल खड़ा कर निरपेक्ष सत्यको ढककर हरि विमुखता संग्रह करते हैं।

प्राकृत सहजियाकी अनित्य-प्रीति नित्य-प्रीति लाभमें बाधक है

नित्य प्रीति, नित्य वैकुन्ठ वस्तु कृष्णचन्द्रमें ही अवस्थित है। नित्य कृष्ण-भक्त निष्कपट होकर उस नित्य प्रीतिमय-विग्रह कृष्णकी सेवा करते हैं। कपट भक्त अपनी २ आसक्तियोंका परित्याग नहीं करते बरन अनित्य वस्तुको कृष्ण-प्रीति संज्ञा देकर नित्य प्रीति लाभ करना चाहते हैं—यह उनकी केवल दुराशा है। अप्राकृत विषयोंका अनुसंधान करतेहैं और प्राकृत दुःसंग करते हैं—ऐसी चेष्टाको अप्राकृत नहीं कहा जा सकता। काठका सिंह जैसे हिंसा करनेमें असमर्थ होता है, दो गायोंके परस्पर संयोगसे जैसे वत्सकी उत्पत्ति असम्भव है, कृत्रिम सोनेका असली सोनेके साथ जैसे साम्य नहीं होता, वैसे ही प्राकृत सहजिया (कपट वेश धारी अभक्त चाहे कितना भी न क्यों भक्तिके अंगोंको अपनी कर्म चेष्टा द्वारा भोग करना चाहे, वे कृष्ण-प्रीति लाभ नहीं कर सकते।

कर्म, ज्ञान और अन्याभिलाष—कृष्णप्रेमकी प्राप्तिमें बाधक हैं

प्राकृत कर्मोंके द्वारा फल भोग प्राप्त होता है, प्राकृत ज्ञान द्वारा फल-त्याग होता है और यथेच्छाचारसे अनित्य इन्द्रिय-सुख प्राप्त होता है। किन्तु अप्राकृत

हरि-भजनके प्रभावसे कृष्णप्रेम उदय होता है। अ-भक्तिकी चेष्टा अथवा कृत्रिम हरि-सेवा द्वारा कभी भी कृष्ण-प्रेमकी प्राप्ति नहीं हो सकती। जैसे आँख और कानमें खाद्य द्रव्य देनेसे पाकस्थलीमें नहीं पहुँचता है, तथा क्षुधा निवृत्ति नहीं होती है; वैसे ही अप्राकृत सेवोन्मुखताके सिवा भगवानकी सेवा होनेकी संभावना। प्राकृत प्रतिबंधक रहनेसे जीव कभी भी कृष्ण की सेवा नहीं कर सकता। यहाँ प्रतिबंधकके सम्बन्ध में श्रीमद्भागवतके निम्नलिखित श्लोककी आलोचना करना अप्रासंगिक न होगा।

यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके,
स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्य धीः।
यत्तीर्थ बुद्धिः सलिले च कर्हिचित्-
जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः ॥

(श्रीमद्भा० १०।८४।१३)

'अर्थात्—जो मनुष्य इस स्थूल शरीरमें आत्म-बुद्धि अर्थात् वात, पित्त और कफ इन तीन धातुओंसे बने हुए शवतुल्य शरीरको आत्मा; स्त्री-पुत्र और परिवार आदिको ही अपना; मिट्टी, पत्थर, काष्ठादि पार्थिव विकारोंको ही इष्टदेव (ईश्वर) मानता है एवं जलको ही तीर्थ समझता है—भगवद्भक्तोंको नहीं, वह मनुष्य होनेपर भी पशुओंमें भी नीच गधा ही है।

प्राकृत सहजिया कृष्ण-भक्त नहीं है

गधा खाद्य-द्रव्योंका बोझ ढोता है, कलछी भोजन परोसती है, किन्तु वे उनका आस्वादन नहीं कर सकते। जैसे काँचके बर्त्तनमें बन्द मक्खी बार बार चेष्टा करनेपर भी काँचको पार नहीं कर सकती, वैसे ही प्राकृत सहजिया भी नित्य-प्रीति प्राप्त नहीं कर सकते।

प्राकृत सहजिया बोझ ढोने वाले गदहे हैं, वे लोग वात, पित्त और कफ—इन तीन धातुओंसे बने इस प्राकृत शरीरको ही अप्राकृत आत्मा मानते हैं; अपने भोग्य स्त्री-पुत्र आदिको अप्राकृत समझते हैं; विष्णु विग्रहको प्राकृत मानते हैं एवं उनका विश्वास है कि जड़ पदार्थ भी जल आदि प्राकृत वस्तुओंके संयोगसे

चित् हो जाता है। प्राकृत व्यवधान रहने पर अप्राकृत वस्तुकी उपलब्धि कभी नहीं होती। देह, धन, उच्च-कुलमें जन्म ग्रहण करनेका सुख, लोभ, मायाधीश और मायाके अधीन जीवोंको बराबर समझना आदि प्राकृत प्रतिबन्धक-समूह परम प्रीति विग्रह श्रीकृष्णका प्रेम लाभ करनेमें बाधा देता है।

सहजियाके प्रति उपदेश

भाई जीव! श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती गोस्वामीने भी तुमको एक दिन कहा था—

दन्ते निधाय तृणकं पदयोर्निपत्य
कृत्वाच काकुशतमेतदहं ब्रवीमि।
हे साधवः सकलमेव विहाय दूराद्-
गौराङ्गचन्द्रचरणे कुरुतानुरागम्॥

(श्रीचैतन्यचन्द्रामृतम्-८।९०)

हम भी तुम्हें कहते हैं कि समस्त अभिमानोंका परित्याग करो, प्राकृत सम्मानकी आशा छोड़ दो, ऐसा करनेसे तुम नित्य अप्राकृत कृष्णनाम भजन कर सकोगे।

शुद्ध कृष्णनामकी सेवा करनेसे नित्य प्रीति लाभ होती है

दस प्रकारके नामापराधोंसे दूर रहो, तभी तुम कपटता शून्य शुद्ध स्वरूप-तत्त्व-ज्ञानरहित भगवन्नामोच्चारणरूप नामाभास कर सकते हो। इसप्रकार प्राकृत प्रतिबन्धकके हाथसे मुक्त होकर कृष्णनाम-सेवा करते-करते नित्य कृष्णप्रीति लाभकर सकते हो। कीर्त्तन प्रतिबन्धकहीन होने पर ही नित्य प्रीति लाभ होती है। उस समय प्राकृत काल और सीमा, वैकुण्ठ वस्तुनामको तुम्हें नित्य प्रीति प्रदान करनेमें बाधा नहीं दे सकते।

भाई जीव! वृथा समय नष्ट न करो। कूप मण्डूक-की तरह अप्राकृत राज्यको प्राकृत न समझो, यदि ऐसा करोगे तो तुम्हीं ठगे जाओगे। अप्राकृतवस्तुकी मार्य्यादाकी हानि किसी प्रकार न कर सकोगे।

—ॐ विष्णुपाद श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती,